द स्वदेशी कॉटन मिल्स कंपन

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

(और संबंधित अपीलें)

(पी बी. गजेन्द्रगडकर, ए.के. सरकार, के. एन. वांचू, के.सी. दास गुप्ता और एन. राजगोपाला अय्यांगर, जेजे.)

<u>औद्योगिक विवाद-</u> प्रत्योजित विधान द्वारा सरकार औघोगिक न्यायालयों की नियुक्ति करेगी और उनका निर्धारण करेगी। साथ ही प्रक्रिया निर्धारित करने के लिए सरकार को अधिकृत करने वाला कानून बनाया जाएगा। ऐसी प्रक्रिया बनाने से पहले आदेश वापसी तथा आवश्यक हो तो आदेश निर्धारण करने में ऐसी शर्तें जो की सभी आवश्यकताओ की पूर्ति करता हो वह स्वीकार्य होगा।-*औधोगिक विवाद अधिनियम 1947 (1974 का 28) धारा 3(सी),(डी) और (जी)- सामान्य आदेश संख्या 615 दिनांक 15 मार्च 1951*

औघोगिक विवाद 1947 की धारा 3 के खण्ड (सी), (डी) और (जी) राज्य सरकार को अधिकृत करती है कि ऐसे प्रावधान बनायें जो सामान्य आदेश और विशेष आदेश जो कि किसी भी औघोगिक विवाद को किसी भी औघोगिक न्यायालय में दिये गये तरीके से सुलह या न्याय निर्णयन आदेश और किसी भी आकस्मिक या समीचीन प्रतीत होता है, उसे लागू करे।

आदेश का उद्देश्य धारा-3 में प्रावधान करना है कि ऐसा कोई सामान्य अथवा विशेष आदेश किया जाना, जो राज्य सरकार की राय में ऐसा करना आवश्यक व समीचीन है। सार्वजनिक सुरक्षा या सुविधा सुनिश्चित करने के लिए, सार्वजनिक व्यवस्था या आपूर्ति और सेवाओं का रखरखाव, समुदाय के जीवन के लिए, रोजगार बनाये रखने के लिए आवश्यक हो। राज्य सरकार ने 15 मार्च 1951 इन प्रावधानों के तहत एक सामान्य आदेश संख्या 615 जारी किया था लेकिन उक्त आदेश में निर्धारित शर्तों के अस्तित्व के बारे में अपनी राय को स्पष्ट नहीं किया गया। औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा-3 में यह संदर्भित किया गया कि अपीलार्थी के खिलाफ एक पुरस्कार (अवार्ड) दिया गया था। अपीलकर्ता ने इसके विरूद्व तर्क दिया कि सामान्य आदेश जो कि औद्योगिक न्यायाधिकरणों की स्थापना करने वाला था, अमान्य था। उक्त अधिनियम की धारा-3 का प्रावधान अवैधानिक था क्योंकि यह सरकार को अपनी शक्तियों को प्रत्यायोजित करने की शक्ति को जहां तक संभव हो, सरकार को आवश्यक विधायी कार्य को सौंपता था। जहां तक खण्ड (सी), (डी) और (जी) चिंताजनक थे और सामन्य आदेश इतना ही बुरा था इसके निर्माण के लिए पूर्व शर्तों का उल्लेख नहीं किया गया था। अप्रार्थी ने शपथ पत्र में दाखिल किया था कि सरकार ने सामान्य आदेश बनाने से पहले ही इसके विषय में अपनी अपेक्षित राय एक शपथ पत्र पर बनायी थी।

निर्धारण, धारा 3 असंवैधानिक नहीं थी क्योंकि सरकार ने आवश्यक विधायी कार्यों का प्रत्यायोजन करने के संदर्भ में विधायिका को अपनी नीति का संकेत पूर्व में ही दे दिया था और इसे आचरण का एक बाध्यकारी नियम बना दिया है। धारा 3 इन शर्तों का निर्धारण करती है कि वे परिस्थितियां जिनमें सरकार को कार्य करना है और यदि निर्धारित शर्तें पूरी हो जाती है तो सरकार सामान्य अथवा विशेष आदेश दे सकती है। धारा-3 यह प्रदान करती है कि उन आदेशों में क्या शामिल होना चाहिए, वह सब कुछ जो सरकार पर छोड दिया गया है, वह कानून के उददेश्यों को पूरा करने के लिए अधीनस्थ नियमों द्वारा प्रदान किया जा सकता था।

दिल्ली कानून अधिनियम, 1912 (1951), एससीआर 747 और क्वीन के संदर्भ में वी बुराह, (1878) एल.आर.5 आईए 178 लागू।

इसके अलावा, यह माना गया कि सामन्य आदेश वैध था और आदेश में पूर्ववर्ती शर्त का उल्लेख स्वयं किया गया था। जिसका समाधान एक शपथ-पत्र पेश करके किया गया जिसमें था कि पूर्ववर्ती शर्तों के मुताबिक अधीनस्थ प्राधिकारी को उक्त आदेश पारित करने से पहले स्वयं को संतुष्ट करना होगा (कार्यकारी या अधीनस्थ विधान प्रकृति में) यह आवश्यक नहीं है कि उक्त शर्तें स्वयं उसी क्रम में संतुष्ट हों जब तक कि विधान को इसकी आवश्यकता न हो तो यह वांछनीय है कि इसका उल्लेख किया जाना चाहिए कि शर्त पूरी हो गयी थी। ऐसी स्थिति तुरंत उत्पन्न हुई और

उक्त शर्तों का बोझ आदेश को चुनौती देने वाले व्यक्तियों पर पडेगा। जो दर्शाता है कि शर्तें इस क्रम में सही नहीं बनायी गयी थी। फिर भी जब क्रम निर्धारण करते समय इनको क्रमबद्ध नहीं बनाया गया हो तो वे शून्य नहीं होगी और ऐसा विधान पारित करने वाले प्राधिकरण पर एक और बोझ डाला जाता है जो अन्य तरीकों से न्यायालयों को संतुष्ट करने का आदेश, जैसे शपथ-पत्र दाखिल कर बताया गया कि जो शर्तें थी जो नजीर के तौर पर संतोषजनक थी।

बॉम्बे राज्य बनाम पुरूषोत्तम जोग नाइक, (1952), एससीआर 674, विश्वभूशण नाइक बनाम उड़ीसा राज्य (1955), 1 एससीआर 92 और बॉम्बे राज्य बनाम भानजी मुंजी (1955)1 एएससीआर 777 लागू।

किंग सम्राट बनाम सिबनाथ बनर्जी (1944), एफसीआर 42 और किंग सम्राट बनाम सिबनाथ बनर्जी (1945), एफसीआर 216 को संदर्भित ।

विचिटा रेलरोड एंड लाइट कंपनी बनाम पब्लिक यूटिलिटीज आयोग कंसास राज्य ;1922 67 एल एड 124 हर्बर्ट महलर बनाम हॉवर्ड एबी ; (1924) 68 एल एड 549 और पनामा रिफाइनिंग कंपनी बनाम एडी रयान(1935) 79 एल ईडी। 446 विशिष्ट।

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार की सिविल अपील संख्या 327/ 1958

सिविल विविध में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के 6 मार्च 1956 के फैसले और डिक्री के खिलाफ अपील 1953 की रिट याचिका संख्या 967।

1958 की सिविल अपील संख्या 363 से 369 के साथ।

सिविल विविध में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के 1 फरवरी 1957 के निर्णयों और डिक्री के विरुद्ध अपील। रिट याचिका संख्या 51; लखनऊ बेंच 523, 524,607,632,633 और 634 1955।

अपीलकर्ता के लिए जीएस पाठक और एसपी वर्मा ;सी.ए नंबर 1958 का 327 ।

सीबी अग्रवालए जीसी माथुर और सीपी लाल उत्तरदाताओं की संख्या 3 से 4 के लिए (1958 के सीए संख्या 327)।

अपीलकर्ताओं के लिए एचएन सान्याल भारत के लिए अतिरिक्त सॉलिसिटर.जनरल एच.एस बरार एस.एन एंडली, जेबी दादाचंजी, रामेश्वर नाथ और पीएल वोहरा(सी संख्या 363 से 369 ए 1958)।

सीबी अग्रवाल और सीपी लाल प्रतिवादी नंबर 1 के लिए ;(सी संख्या 363 से 369 1958 का)

प्रतिवादी संख्या 4 के लिए भवानी लाल और धरम भूशण ;1958 के(सीए संख्या 369 1958 का)

जेपी गोयल प्रतिवादी नंबर 4 के लिए (सीए संख्या 366 और 368 1958 का)

प्रतिवादी संख्या 4 के लिए व्यक्तिगत रूप से एससी दास (1958 के सीए संख्या 367 में)

17 मार्च 1961 को माननीय न्यायाधीश वाचू जे. द्वारा निर्णय सुनाया गया कि अपीलों का एक समूह जो संयुक्त प्रांत औद्योगिक विवाद अधिनियम 1947 की धारा 3 (1947 का यूपी XXVIII) की संवैधानिकता पर सवाल उठाता है (इसके बाद अधिनियम के रूप में संदर्भित) और 15 मार्च 1951 के तहत 2 सामान्य आदेश की वैधता अपीलकर्ताओं और कुछ श्रमिकों के बीच विवाद थे जिन्हें 15 मार्च, 1951 सामान्य उददेश्यों के तहत कथित न्यायाधिकरण को भेजे गये थे जिनके द्वारा कुछ निर्णय पारित किया गया था जिन्हें वर्तमान अपीलकर्ताओं द्वारा श्रम अपीलीय न्यायाधिकरण में अपील किया गया था। न्यायाधिकरण और अपीलकर्ता ऐसा करने में असफल रहे थे। फिर उन्होंने अनुच्छेद-226 के तहत याचिका दायर की। इस विषय में संविधान के अनुच्छेद-226 की संवैधानिकता को इलाहाबाद उच्च न्यायालय में चुनौती दी। औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा-3 एवं 15 मार्च, 1951 को पारित किये गये दो सामान्य आदेशों की वैधता, जिनके द्वारा न्यायाधिकरण स्थापित किये गये थे, उच्च न्यायालय ने निर्धारित किया कि औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा-3

संवैधानिक थी। हालांकि यह माना गया कि 15 मार्च, 1951 के दो सामान्य आदेश अमान्य थे लेकिन यह माना गया कि इन मामलों में पारित संदर्भित आदेश उक्त धारा के तहत परिकल्पित विशेष आदेश थे। इसलिए उक्त अधिनियम की धारा-3 में अमान्य नहीं थे। परिणामस्वरूप इसने याचिकाएं खारिज कर दीं। इसके बाद अपीलकर्ताओं ने अपील प्रस्तुत करने की अनुमति के लिए आवेदन किया और प्रमाण-पत्र प्राप्त किया। इस तरह मामला माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष आया।

इन अपीलों के संबंध में तथ्यों को और अधिक स्पष्ट करना आवश्यक है क्योंकि अपीलकर्ताओ के द्वारा माननीय न्यायालय के समक्ष जो एकमात्र बिंदु जिस पर तर्क दिया गया था वह औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा-3 की संवैधानिकता के बारे में था कि उक्त अधिनियम की धारा-3 और 1951 के दो सामान्य आदेशों की वैधता में कोई विवाद नहीं है और अपीलकर्ता इन बिंदुओं पर असफल होते हैं तो उक्त न्यायालय में उनकी अपील विफल होनी चाहिए इसीलए हम सबसे पहले औद्योगिक अधिनियम की धारा-3 का सवाल उठायेंगे। उक्त अधिनियम की धारा-3 के प्रावधान निम्नानुसार हैं।

'' यदि सरकार की राय में सार्वजनिक सुरक्षा और सुविधा सुनिश्चित करने अथवा सार्वजनिक व्यवस्था बनाये रखने या समुदाय के जीवन के लिए आवश्यक आपूर्ति और सेवाओं या रोजगार के लिए ऐसा करना

आवश्यक या समीचीन है तो सामान्य विशेष आदेशों का प्रावधान कर सकती हैं-

(सी) औद्योगिक न्यायालयों की नियुक्ति के लिए।

(डी) किसी भी औद्योगिक विवाद को आदेश में दिये गये तरीके से सुलह या न्याय निर्णयन के लिए निर्दिष्ट करने के लिए।

(जी) किसी भी आकस्मिक या पूरक मामलों के लिए जो राज्य सरकार को इस उद्देश्य और समीचीन के लिए आवश्यक प्रतीत होते हैं ।

इस विषय में अपीलकर्ताओं का मुख्य तर्क रहा है कि औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 3 असंवैधानिक है क्योंकि सरकार को अब तक आवश्यक विधायी कार्य सौंपता है (सी), (डी) और (जी) का इस संबंध में दिल्ली कानून अधिनियम 1912(1), में सीजे करणिया द्वारा की गई टिप्पणियों पर भरोसा किया जा सकता है। जहां उन्होंने ''प्रतिनिधिमण्डल'' शब्द के अर्थ पर निम्न विचार रहे थे।

'' जब एक विधायी निकाय कोई अधिनियम पारित करता है तो उसे अपने विधायी कार्यों का प्रयोग करना चाहिए तो ऐसे कार्य की अनिवार्यता विधायी नीति का निर्धारण और आचरण के नियम के रूप में इसका निर्माण करना चाहिए विधायिका की विषेश्ता है कि वह अपने आप में अनिवार्य शर्तों से संरक्षित होती है तथा यह विशेषज्ञताएं संरक्षित करती हैं तथा विधायिका तथ्य के मूल निर्देशकों को निर्दिष्ट करती हैं जिनके

सुनिश्चित होने पर, प्रासंगिक दिनांक से, एक नामित प्रशासनिक एजेंसी द्वारा यह निर्धारित किया जाता है कि इसका यह वैधानिक आदेश प्रभावी होना चाहिए। विधायिका ने इस प्रकार अपने कानून बनाएं हैं जिससे स्पष्ट है कि इसे लागू करने और अधिनियमों को लागू करने एवं प्रभावी बनाने के लिए प्रत्येक विवरण विधायिका द्वारा किया जा सकता है या किसी अन्य अधीनस्थ ऐजेंसी या किसी कार्यकारी अधिकारी पर छोडा जा सकता है जबकि इसे कभी-कभी विधायी शक्ति के प्रतिनिधिमण्डल के रूप में भी वर्णित किया जा सकता है। संक्षेप में यह विधायी शक्तियों के प्रतिनिधिमण्डल से अलग है जिसका अर्थ है विधायी नीति का निर्धारण और आचरण के रूप में उसी का निर्माण हो।

उपरोक्त वर्णित मामले पर जे. मुखर्जी की टिप्पणी समान रूप से प्रभाव डालती है। इस मामले में बिंदु संख्या 982

> ''आवश्यक विधायी कार्य में विधायी नीति का निर्धारण या चयन करना और उस नीति को औपचारिक रूप से आचरण के बाध्यकारी नियम में लागू करना शामिल है। यह विधायिका के लिए खुला है कि नीति को व्यापक रूप से कम या अधिक विवरण के साथ तैयार कर सके, जैसा वह उचित समझे और वह विशेष विधायी कार्यों को अधीनस्थ को सौंप सकता है जो उस ढांचे के भीतर विवरण तैयार

करेगा जब तक कोई नीति निर्धारण की जाती है और कानून द्वारा एक मानक स्थापित किया जाता है तो विधायी शक्ति का कोई वैधानिक प्रतिनिधिमण्डल निर्धारित सीमाओं के भीतर अधीनस्थ नियमों के निर्धारण और उन तथ्यों के निर्धारण के लिए चयनित उपकरणों को छोडने में शामिल नहीं होता है या जिस सीमा तक कानून लागू होता है''

इसलिए हमें यह देखना होगा कि क्या इस मामलें में विधायिका ने विधायी नीति को निर्धारण करने और चुनने और उस नीति को औपचारिक रूप से आचरण के बाध्यकारी नियम लागू करने का अपना आवश्यक विधायी कार्य पूरा किया है यह विधायिका के लिए खुला था कि वह उस नीति को व्यापक रूप से कम या अधिक विवरणों के साथ तैयार करे जैसा उसे उचित लगे। इसके बाद एक बार जब नीति निर्धारण हो जाती है और कानून द्वारा एक मानक स्थापित हो जाता है तो विधायी शक्ति के प्रत्यायोजन पर कोई सवाल नहीं उठता है इसलिए विधायिका ने औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा-3 में इस नीति को चुना है और इस नीति को औपचारिक रूप से आचरण के बाध्यकारी नियम के रूप में अधिनियमित किया जाता है। यह निर्धारित मामलों के भीतर अधीनस्थ नियमों के माध्यम से निर्धारित करने के लिए विशेष विवरण सरकार पर छोड सकता है। अब औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा-3 में यह स्पष्ट किया गया है कि जिन शर्तों के तहत सरकार उक्त धारा के तहत

कार्य करने के लिए खुली रहेगी। इसमें यह भी निर्धारित किया जाता है कि एक बार शर्त पूरी हो जाने पर सरकार शामिल विशेष आदेश से नियम पारित कर कार्य कर सकती है। धारा-3 में यह प्रावधान किया गया है कि सरकार के सामान्य और विशेष आदेश में क्या शामिल है सरकार को दी गई शक्तियां अन्य बातों के साथ-साथ औद्योगिक न्यायालयों द्वारा नियुक्ति करना, किसी भी औद्योगिक विवाद को आदेश में दिए गए तरीके से सुलह या न्याय निर्णयन के लिए संदर्भित करना और कोई भी आकस्मिक पूरक प्रावधान करना शामिल है जो आदेश के प्रयोजनों के लिए आवश्यक या समीचीन हो सकता है इस प्रकार विधायिका ने अपनी नीति का संकेत दिया है और इसे आचरण का बाध्यकारी नियम बना दिया है। इसमें यह भी बताया गया है कि सरकार कब धारा-3 के तहत कार्यवाही करेगी और उपरोक्त वर्णित परिस्थितियों में हमारी राय है कि यह नहीं कहा जा सकता है कि धारा-3 द्वारा बनाया गया प्रतिनिधिमण्डल धारा-3 में दी गयी अनुज्ञेय सीमाओं से परे है। धारा-3 के तहत सरकार द्वारा पारित किया जाने वाला आदेश अन्य बातों के साथ-साथ, आद्यौगिक अदालतों की नियुक्ति, किसी भी औद्योगिक विवाद को सुलह या न्याय निर्णयन के लिए, संदर्भित करने आकस्मिक या पूरक मामलों के लिए जो आवश्यक और समीचीन हो सकता है, प्रदान करेगा। सरकार को उक्त धारा के तहत निर्धारित मामलों के भीतर कार्य करना होगा जिसमें अधीनस्थ नियमों की शक्ति होगी। अपीलार्थियों की ओर से आग्रह किया गया है कि

उक्त धारा यह नहीं बताती है कि औद्योगिक अदालतों के पास क्या-क्या शक्तियां होंगी, ऐसी अदालतों का गठन करने वाले व्यक्तियों की योग्यता क्या होगी और वे कहां बैठेंगे?

इसके साथ ही यह भी आग्रह किया जाता है कि वे आवश्यक मामले जो विधायिका को अपने लिए प्रदान करना चाहिए था। इस संदर्भ में प्रीवी काउंसिल द्वारा क्वीन बनाम बुराह (1) मामले का संदर्भ दिया गया था जो कि सशर्त कानून का मामला था। प्रिवी काउंसिल ने वहां देखा कि उचित विधायिका ने स्थान, व्यक्ति, कानून और शक्तियों के संबंध में अपने निर्णय का प्रयोग किया है और उस निर्णय का परिणाम इन सभी चीजों के संबंध में सशर्त कानून है। जैसे ही स्थिति पूरी होगी कानून पूर्ण हो जाएगा हमारी राय में उक्त टिप्पणियों का विस्तार के ऐसे मामलों से कोई लेना-देना नहीं है जैसे कि वह स्थान जहां पर कोई अदालत या न्यायाधिकरण बैठेगा या न्यायाधिकरण का गठन करने वाले व्यक्ति की योग्यता जिनमें "स्थान" और "व्यक्ति" शब्दों का उपयोग किया जाता है वे अधिक बुनियादी मामलों का उल्लेख करते हैं। वहां स्थान मतलब वह क्षेत्र होना चाहिए जिस पर कानून लागू होगा और जहां तक यह प्रश्न है कि विधायिका ने इस मामले में क्षेत्र का निर्धारण किया है जिसके तहत धारा-3 संपूर्ण उत्तरप्रदेश राज्य पर लागू होगी। इस तरह प्रयोग किया गया शब्द "व्यक्ति" उन व्यक्तियों को संदर्भित करता है जिन पर कानून लागू होता है और जहां तक उसका संबंध है विधान मंडल ने इस मामले के

क्षेत्राधिकार का निर्धारण किया है अर्थात् यह ओद्योगिक मामलों के नियोक्ताओ और कर्मचारियों पर लागू होगी। यह पहले भी स्पष्ट किया जा चुका है कि जिन शर्तों के तहत आदेश पारित किया जाएगा। उन्हें भी धारा-3 के शुरूआती भाग में निर्धारित किया गया है। धारा-3 के तहत सरकार कैसे कार्य करेगी यह भी निर्धारित किया गया है अर्थात् किसी भी ओद्योगिक विवाद को सुलह या न्याय निर्णयन के लिए संदर्भित कार्य जहां तक ओद्योगिक न्यायालय की शक्ति का सवाल है, उक्त शक्ति धारा-3 प्रदान करती है। जहां तक ओद्योगिक न्यायालय की शक्ति का सवाल उसे भी हमारी राय में धारा-3 के द्वारा ही प्रदान की गई है अर्थात् ओद्योगिक न्यायालय द्वारा अपना नियोक्ता संदर्भित किया गया, ओद्योगिक विवाद पर निर्णय देगा इसलिए जो कुछ भी सरकार पर छोड दिया गया था वह एक सामान्य आदेश के माध्यम से ही अपने तंत्र स्थापित करेगा जिसमें विधायिका की नीति को पूरा करने के लिए अधीनस्थ नियमों का प्रावधान है जैसा धारा-3 में व्यापक विवरण में अधिनियमित किया गया है और इसे व्यापक रूप से चुनाव के बाध्यकारी नियम के रूप में नियम बनाया गया है इसलिए हमारी राय में धारा-3 किसी भी तरह से असंवैधानिक नहीं है क्योंकि इसके अंतर्गत विधायी कार्यों की अनिवार्यताओ का कोई प्रत्यायोजन नहीं किया जा सकेगा, उस अनुभाग को भी सरकार द्वारा छोड़ा गया था वह उद्देश्यों को पूरा करने के लिए अधीनस्थ नियमों द्वारा प्रदान करना है इसलिए हमें (1) (1878) एलआर 5 आईए 178 को तर्कों को अस्वीकार

करना चाहिए था धारा-3 इस आधार पर असंवैधानिक है कि वह तथ्य प्रयोजन के दोश से ग्रसित है यह नियम हमें 15 मार्च, 1951 के सामान्य आदेश 615 द्वारा वैधता की ओर ले जाता है जो धारा-3 के तहत पारित किया गया था। धारा-3 के उक्त आदेश की प्रस्तावना में उक्त शब्दों का प्रयोग किया गया था

> "यूपी ओद्योगिक विवाद अधिनियम 1947(यू.पी अधिनियम संख्या XXVIII 1947) की धारा-3 और धारा-8 के खंड (बी), (डी) और (जी) द्वारा प्रदत्त का प्रयोग करते हुए और 10 मार्च, 1948 के सरकारी ओदश संख्या 781 (एल) XXVIII का अधिक्रमण करते हुए, राज्यपाल निम्नलिखत आदेश देने और उक्त अधिनियम की धारा 19 के संदर्भ में निर्देश देने से आदेश की संसूचना राजपत्र में प्रकाशित की गई। "

इसके बाद सुलह के उद्देश्य से सुलह बोर्ड में न्याय निर्णयन के उद्देश्य से ओद्योगिक न्यायाधिकरणों द्वारा आदेशों का पालन किया जाता है। अपीलकर्ताओ की ओर से मुख्य तर्क यह रहा है कि धारा-3 किसी आदेश को पारित करने से पहले कुछ शर्तों का निर्धारण करती है और उन शर्तों को आदेश में दौहराया जाना चाहिए ताकि यह धारा-3 द्वारा प्रदत्त शक्ति का वैध प्रयोग हो सके। अब यह कोई संदेह नहीं रह जाता है कि

धारा-3 राज्य रकार को सामान्य विशेष आदेश प्रदान करने की शक्ति दे। यदि हमारी राय में सार्वजनिक सुरक्षा सुविधा सुनिश्चित करने, सामाजिक व्यवस्था बनाए रखने या आवश्यक आपूर्ति और सेवाओ के लिए ऐसा करना आवश्यक या समीचीन है या समुदाय का विवरण रोजगार बनाए रखने के लिए ऐसी राय का बनना आदेश बनाने के लिए उसे पूर्ववर्ती शर्त है, तो दूसरे आदेश की प्रस्तावना में यह उल्लेख नहीं है कि राज्य सरकार ने आदेश देने से पहले ऐसी राय बनायी थी इसलिए अपीलकर्ताओ की ओर से तर्क दिया गया कि आदेश खराब थे क्योंकि उनके निर्माण के लिए पूर्ववर्ती शर्तों को आदेश में नहीं बताया गया था बाद में गठन में अपीलकर्तओ ने यह तर्क भी दिया कि किसी भी मामले में आदेश खराब थे क्योंकि वास्तव में राज्य सरकार की संतुष्टि के बिना पारित किया गया था जैसा कि धारा-3 के तहत आवश्यक था हालांकि उपरोक्त वर्णित मामले के गठन के समर्थन में अपीलकर्ताओ द्वारा कोई शपथ-पत्र दायर नहीं किया गया था, दुर्भाग्य से राज्य ने यह दिखाने के लिए कोई शपथ-पत्र दाखिल नहीं किया कि पूर्ववर्ती शर्तें में जो प्रावधान किया गया है वो धारा-3 की अनुपालना में किया गया है। भले ही आदेश में प्रथम दृष्टया कोई उल्लेख नहीं था फिर भी हमें उम्मीद करनी चाहिए। अपीलकर्ताओ ने मामले के इस पहलू पर अपने मामले के समर्थन में एक शपथ-पत्र दायर नहीं किया है लेकिन राज्य ने एहतियात के तौर पर यह बताने के लिए एक शपथ-पत्र दायर किया कि धारा-3 में जो निर्धारित शर्तें हैं, उनकी अनुपालना मान ली

गयी थी। यह भी एक सामान्य आदेश था जिस पर हमला किया जा रहा था जिसके तहत बडी संख्या में निर्णय हुये होंगे। उच्च न्यायालय ने मामले के इस पहलू पर टिप्पणी की है और कहा है कि राज्य सरकार ने इस संदर्भ में कोई शपथ पत्र दायर नहीं किया है जिसका पता चल सके कि वास्तव में राज्य सरकार धारा-3 की अपेक्षाओ से संतुष्ट है। भले ही आदेश में संतुष्टि का कोई मामला नहीं था फिर भी मामले के महत्व को ध्यान में रखते हुए विशेष रूप से इससे बडी संख्या में नियोक्ताओ और श्रमिक को प्रभावित करने वाले निर्णय प्रभावित होंगे। हमने राज्य सरकार से पूछा कि क्या वह इस स्तर पर हमारे समक्ष एक शपथ-पत्र दायर करना चाहती है। इसके बाद राज्य सरकार ने श्रम विभाग के शासन सचिव का शपथ पत्र लेकर एक हलफनामा दायर किया और उसमें कहा गया कि 15 मार्च, 1951 को पारित जीओ नंबर 615 और संदर्भित आदेश या जीओ नंबर 671 का प्रस्ताव तत्कालीन श्रम मंत्री के सामने रखा गया था। उक्त अधिसूचना राज्य सरकार द्वारा मामले के सभी पहलुओ पर पूरी तरह से विचार के बाद ही जारी की गई और उसने स्वयं को संतुष्ट करते हुए स्पष्ट किया कि सार्वजनिक सुविधा सुनिश्चित करने और सार्वजिनक व्यवस्था और आपूर्ति बनाए रखने के उद्देश्य से इसे जारी करना आवश्यक और समीचीन था और समुदाय के लिए तथा रोजगार बनाए रखने के लिए आवश्यक सेवाएं वे इस हलफनामे में स्वीकार करते हैं और इसलिए इस प्रकार से धारा-3 समाहित के आदेश जारी करने के लिए शर्त के रूप में

संतुष्टि जिसकी आवश्यकता होती है, वे ओद्योगिक अधिनियम की धारा-3 में वास्तव में 15 मार्च, 1951 को आदेश संख्या 615 पारित चीजों से पहले ही मौजूद था। इसके बाद उसी तारीख को आदेश संख्या 671 पारित किया गया जिसे देखते हुए हमें एकमात्र प्रश्न पर विचार करना होगा कि क्या यह आवश्यक है कि संतुष्टि का पाठ क्रम में ही किया जाए तथा इस तरह के क्रम के अभाव में पाठ्यक्रम का कोई क्रम खराब न हो।

अपीलार्थियों में से एक की ओर से उपस्थित होने वाले श्री पाठक का पहला तर्क यह रहा था कि वैधानिक शक्ति के प्रयोग के लिए एक पूर्ववर्ती शर्त रखी गयी है, उसे अधीनस्थ प्राधिकारी द्वारा ऐसी प्रत्योजित शक्ति का प्रयोग करने से पहले पूरा किया जाना आवश्यक है इस विवाद के संबंध में कोई विवाद नहीं हो सकता। इसके अलावा श्री पाठक के अनुसार एक पाठ होना अवश्य चाहिए। इस क्रम में अधीनस्थ प्राधिकारी द्वारा ऐसी प्रत्यायोजित शक्ति के प्रयोग में कार्य करने से पहले शर्त पूरी हो जाती है यदि उस तंत्र में ऐसा कोई उल्लेख नहीं है जिसके द्वारा प्रत्यायोजित शक्ति का प्रयोग किया जाता है तो दोष को कार्यवाही में दायर शपथ पत्र द्वारा ठीक नहीं किया जा सकता है और आदेश प्रारंभ से ही शून्य होगा। यह आग्रह किया जाता है कि जहां इस प्रकृति के अधीनस्थ नियम बनाये जाने हैं और वे आम जनता या उसके एक वर्ग को प्रभावित करते हैं, वहां शक्ति के प्रयोग से पहले की शर्तों की शक्ति का प्रयोग करते समय दौहरान किया जाना चाहिए ताकि जनता को पता चल सके कि नियम

कानून है और इस उद्देश्य के लिए आवश्यक शर्तों को पूरा करने के बाद बनाये गये नियम, इसके अलावा कुछ अधीनस्थ नियमों को अदालतों न्यायाधिकरणों द्वारा लागू करना पड़ सकता है और यह आवश्यक है, बाध्यकारी है एवं इसके बाद के दायर किये गये नियम व शर्तें मिसाल के तौर पर संतोषजनक थे, विशेष रूप से यह आग्रह किया जाना चाहिए कि जहां नियम सामान्य प्रकृति के हैं और अधीनस्थ कानून हैं, जहां इस अधीनस्थ प्राधिकारी का संबंध है, पूर्ववर्ती स्थिति की संतुष्टि विधायी प्रक्रिया की एक हिस्सा बन जाती है और विधायी प्रक्रिया में दोष को शपथ पत्र से ठीक नहीं किया जा सकता।

दूसरी ओर श्री सीबी अग्रवाल का तर्क रहा है कि जहां कोई कानून कुछ शर्तों के अधीन आदेश देने की शक्ति देता है तब तक जब तक कानूनों को, शर्तों को, आदेश में निर्धारित करने की आवश्यकता नहीं होती है तब तक यह आवश्यक नहीं है कि शर्तें समान मानी जानी चाहिए। आदेश और ऐसे मामले में यह माना जाना चाहिए कि शर्त पूरी हो गयी है जब तक विपरीत स्थिति न हो उन्होंने उन मामलों के बीच अंतर किया, जहां शर्त की मिसाल अधीनस्थ प्राधिकारी द्वारा व्यक्तिगत राय है और जहां कानून के लिए सुनवायी निष्कर्ष की आवश्यकता होती है पहले मामले में उनका तर्क है कि अनुमान आदेश पारित होने से पहले बनी राय के पक्ष में होना चाहिए हालांकि बाद वाले मामले में यह हो सकता है कि आदेश यह दर्शाये कि सुनवायी हुई थी और निष्कर्ष निकला था।

धारा-3 की शक्तियां आदेश पारित करने के अंतर्गत आवश्यक राय बनते ही उत्पन्न हो जाती हैं। आदेश देने से पहले यह राय स्वाभाविक रूप से बनती है। यदि ऐसी कोई राय बनी और इसके बाद आदेश पारित किया गया है तो अगला आदेश अनुभाग द्वारा प्रदत्त शक्ति का एक वैध प्रयोग होगा। तथ्य यह है कि आदेश को प्रकाशित करने के लिए जो अधिसूचना बनायी जाती है उसमें राय का कथन नहीं किया जाता है। इससे उस आदेश को बनाने की शक्ति उसी दिन छिन जाएगी जो पहले ही उत्पन्न हो चुकी थी और आदेश बनाने के लिए प्रेरित हुई थी इसलिए आदेश की वैधता आदेश में राय की पुनरावृत्ति पर नहीं लेकिन राय के वास्तविक गठन और परिणाम में आदेश के निर्माण पर निर्भर रहती है इसलिए यदि असावधानी से या अन्यथा आदेश की प्रस्तावना पर राय के गठन में राय का उल्लेख नहीं किया गया है तो कार्यवाहियों में अन्य साक्ष्य दिखाकर दाेष का निवारण किया जा सकता है जहां आदेश की वैधता को चुनौती दी जाती है कि वास्तव में आदेश ऐसी राय बनने के बाद दिया गया था और इस प्रकार यह कानून द्वारा प्रदत्त शक्ति का वैध प्रयोग था तो इस पाठ्यक्रम का एकमात्र अपवाद वह होगा जहां कानून के अनुसार आदेश को वैध बनाने से पहले उसमें स्वयं एक पाठ होना चाहिए।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि जहां किसी कानून के लिए आवश्यक है कि कुछ पूर्व निर्धारित शर्तों को पूरा करने पर कुछ प्रत्यायोजित शर्तों का प्रयोग किया जा सकता है तो यह सबसे वांछनीय है कि अभ्यास की

शुरूआत यह दर्शाने के साथ की जानी चाहिए कि शर्त पूरी हो गई है लेकिन कार्यकारी आदेशों ने निपटने वाले कई मामलों में यह माना गया कि अगर इस तरह की कोई कमी है तो यह आदेश शुरूआत से अमान्य होता है और बाद में यह दिखाने के लिए शपथ पत्र प्रस्तुत करके आदेश को पूरा किया जा सकता है। उक्त शर्त मिसाल के तौर पर संतोशजनक थी, बाॅम्बे राज्य बनाम पुरूषोत्तम जोग नाइक (1) में, जो कि निवारक निषेध से संबंधित मामला था इस न्यायालय द्वारा माना गया कि भले ही आदेश का स्वरूप दोषपूर्ण हो लेकिन राज्य सरकार के लिए अन्य तरीकों को साबित करने के लिए खुला था कि वह वैध रूप से बनाया गया था। ***विश्वभूशण नाइक बनाम उडीसा राज्य (2) में जो भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम संख्या सेकण्ड 1947*** के तहत मंजूरी से संबंधित मामला था, में न्यायालय ने माना कि मंजूरी के पहले तथ्यों का बताया जाना वांछनीय है क्योंकि जब मंजूरी के तथ्यों को निर्धारित नहीं किया जाता है तो सबूत भी देना पडता है कि आरोप लगाये गये अपराध के तथ्यों के संबंध में मंजूरी दी गयी थी लेकिन मंजूरी के तथ्यों को निर्धारित करने में चूक तब तक घातक नहीं है जब तक तथ्य किसी अन्य तरीके से साबित किये जा सकते हैं या अन्य किसी तरीके से साबित किये जा सकते हों। **बाॅम्बे राज्य बनाम भानजी मुंजी (3)** के बाद के मामले में जो बाॅम्बे भूमि अधिग्रहण अधिनियम मांग का मामला था में इस न्यायालय ने माना कि आदेश में मांग के उद्देश्य को निर्धारित करना आवश्यक नहीं था क्योंकि ऐसे

पाठ्यक्रम पर वांछनीयता स्पष्ट थी क्योंकि जब यह नहीं किया गया तो उद्देश्य का प्रमाण अन्य तरीकों से दिया जाना चाहिए लेकिन अपने आपमें आदेश में उद्देश्य निर्धारित करने की चूक तब तक घातक नहीं थी जब तक की तथ्य किसी अन्य तरीके से अदालत की संतुष्टि के लिए स्थापित नहीं किये गये हों।

हमें इस सिद्घांत के पालन करने में कोई कठिनाई नहीं देती है क्योंकि कार्यकारी आदेशों के मामले में अदालत की संतुष्टि के लिए स्थापित किया जा सकता है कि उसे उसी तरह पूरा नहीं किया जा सकता यह **एसीआर 674 (1952)(2) (1955), 1 एससीआर 921 (3) (1955) 1 एससीआर 777** में प्रतिपादित किया गया था उन आदेशों का मामला जो कि प्रदान विधान की प्रक्रति में है, के विषय में।

हम श्री अग्रवाल के अतिवादी कथन को स्वीकार नहीं कर सकते कि केवल यह तथ्य द्वारा आदेश पारित कहा गया है अनुमान लगाने के लिए पारित है कि पूर्ववर्ती शर्तें को पूरा करने को किया गया है। भले ही आदेश में इस आशय का कोई उल्लेख नहीं है तो हमारी राय में ऐसा अनुमान तभी लगाया जा सकता है जब उस आशय का कोई पाठ हो, इस तरह के पाठ के अभाव में आदेश को इस आधार पर चुनौती दी जा सकती है कि वास्तव में कोई संतुष्टि नहीं थी तो आदेश पारित करने वाले

प्राधिकारी को अन्य तरीकों से अदालतों को संतुष्ट करना होगा तथा आदेश पारित करने से पहले पूर्ववर्ती शर्तें पूरी हुई थीं।

हम श्री पाठक के इस तर्क से प्रभावित नहीं है कि यदि पाठ नहीं होगा तो जनता या अदालतों और न्यायाधिकरणों को पता नहीं चलेगा कि आदेश विशेष रूप से पारित किया गया था इसलिए यह आवश्यक है कि सामने होना चाहिए। ऐसे मामले में आदेश देने से पहले इसे वैधानिक माना जा सकता है। ऐसे मामले में सार्वजनिक कृत्यों की अनियमित्ताओ की धारणा लागू होगी लेकिन वरदान के रूप में आदेश को चुनौती दी गई है और यह कहा गया है कि इसे पूर्ववर्ती शर्तों के पूरा किये बिना ही पारित किया गया था, इसका बोझ अन्य तरीकों से संतुष्ट के लिए प्राधिकारी पर होगा कि पूर्ववर्ती शर्तों को पूरा किया गया था का अनुपालन किया गया है (ऐसे मामलोंं के बीच अंतर जहां सामान्य आदेश में प्रत्यक्ष तौर पर एक पाठ शामिल होता है।) बाद में मामलों में अदालत को अन्य तरीकों से संतुष्ट करने के लिए आदेश देने वाले प्राधिकारी पर बोझ डाला जाता है। पूर्ववर्ती शर्तों को पूरा किया गया था लेकिन पूर्व मामले में अदालत पूर्ववर्ती शर्तें सहित आदेश की नियमित्ता मान लेगी और फिर यह आदेश की वैधता को चुनौती देने वाली पार्टी के लिए होगा कि वह दिखाए कि पाठ सही नहीं था और पूर्ववर्ती शर्तों का वास्तव में प्राधिकरण द्वारा अनुपालन नहीं किया गया था। (**किंग एम्पनरर बनाम में स्पेंस सीजे की टिप्पणियां देखें। सिबनाथ बनर्जी (1), जिन्हें किंग एम्परर बनाम सिबनाथ बनर्जी (2)** में

प्रिवी काउंसिल द्वारा अनुमोदित किया गया था न ही हम श्री पाठक के इस तर्क से प्रभावित हैं कि स्थितियां (1) (1944) एफसीआर 1, 42 का हिस्सा बन जाती है। (2) (1945) एफसीआर 195)

विधायी प्रक्रिया और इसलिए उनका अनुपालन अधीनस्थ कानून के साथ नहीं किया जा सकता है, वह अवैध है और दोष को ठीक नहीं किया जा सकता है, बाद में उसे शपथ पत्र द्वारा भी ठीक नहीं किया जा सकता है लेकिन यह आदेश कार्यकारी प्राधिकारी द्वारा कार्यवाही को विधायी प्रक्रिया जैसी किसी चीज से समाहित नहीं करता जिसका किसी विधेयक के कानून बनाने से पहले पालन किया जाना चाहिए इसलिए हमारा निष्कर्ष है कि जहां किसी अधीनस्थ प्राधिकारी को आदेश पारित करने से पहले कुछ शर्तों को पूरा करना पड़ता है। चाहे वह कार्यकारी हो या अधीनस्थ कानून के चरित्र का हो यह आवश्यक नहीं है कि उन शर्तों की संतुष्टि के पाठ में उल्लेख किया जाए, स्वयं आदेश दे जब तक कि कानून को इनकी आवश्यकता न हो हालांकि जैसा कि हमने पहले ही टिप्पणी की है यह सबसे वांछनीय है कि ऐसा होना चाहिए उस स्थिति में यह धारणा उत्पन्न हो जाएगी कि शर्तें पूरी हो गयी हैं और चुनौती देने वाले व्यक्ति पर बोझ डाल दिया जाएगा। संतुष्टि का तथ्य यह दर्शाना है कि जो पढ़ा गया है, वह सही नहीं है लेकिन यहां तक कि जहां आदेश के मुख्य पृष्ठ पर पाठ नहीं है, आदेश शुरू से ही अवैध नहीं होगा और अदालत को अन्य तरीकों से संतुष्ट करने के लिए आदेश पारित करने वाले प्राधिकारी पर

केवल एक और बोझ डाला जाएगा कि पूर्ववर्ती शर्तों का अनुपालन किया गया था। वर्तमान मामले में हमारे समक्ष यह शपथ पत्र दाखिल किया गया है इसलिए हमारी राय में 15 मार्च, 1951 के दो आदेशों में दोश ठीक हो गया है और यह स्पष्ट है कि राज्य सरकार के संतुष्ट होने के बाद उन्हें पारित किया गया था। ओद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा-3 के तहत 15 मार्च, 1951 के सरकारी आदेश संख्या 615 और 671 वर्तमान धारा के प्रावधानों के अनुसार वैध है।

अपने तर्क के समर्थन में श्री पाठक द्वारा संदर्भित मामले जिन पर विचार किया जाना स्पष्ट है, उनमें से पहला मामला जिसका संदर्भ दिया जा सकता है वह **विचिटा रेलरोड एड लाइट कंपनी बनाम कैनसस राज्य का सार्वजनिक उपयोगिता आयोग** ***(1)*** है तथा यह एक आयोग का मामला था जिसे सुनवाई करनी थी और निष्कर्ष निकालना था कि जनता के साथ अनुबंध दरों से पहले वे अनुचित थे।

उपयोगिता कंपनी बदली जा सकती है। विचाराधीन अधिनियम के धारा-13 में अमेरिकी सर्वोच्च न्ययालय ने माना कि आयोग का वैध आदेश अधिनियम के तहत एक वैध आदेश में सुनवाई और जांच के बाद तथ्य का निष्कर्ष शामिल होना चाहिए जिस पर आदेश आधारित है और इस तरह के निष्कर्ष की कमी के अभाव में इस मामले के आदेश अमान्य या शून्य थे।" माननीय अदालत ने इस तर्क को खारिज कर दिया कि स्पष्ट निष्कर्ष की

कमी निहितार्थ और आयोग की कार्यवाही को लागू करने वाली याचिका के कथनों के संदर्भ में प्रदान की जा सकती है और इस सिद्घांत द्वारा अपना निर्णय दिया कि आयोग द्वारा अनुचित्त का एक स्पष्ट निष्कर्ष अपरिहार्य था। राज्य के कानून हमारी राय में मामला संबंधित कानून के प्रावधान पर आधारित है जिसके लिए इस तरह के निष्कर्ष को आदेश में बताया जाना आवश्यक है और यह इस प्रस्ताव के लिए कोई अधिकार नहीं है कि एक प्रतिनिधि द्वारा अभ्यास करने से पहले प्रत्येक मामले में आदेश में एक स्पष्ट पाठ आवश्यक है इसलिए इसे शक्तियां सौंपी गई।

अगला मामला **हर्बर्ट महलर बनाम हाॅवर्ड एबी(1)** है, यह विदेशियों के निर्वासन से संबंधित मामला था इस कानून में निर्वासन के लिए प्रावधान किया गया है कि सचिव (श्रम) सुनवाई के बाद यह पाते है कि विदेशी संयुक्त राज्य अमेरिका के अवांछनीय निवासी थे तो कानून में निर्वासन का प्रावधान है लेकिन सचिव ने अभी तक कोई स्पष्ट आग्रह नहीं किया है क्योंकि निर्वासन के वारंट में इसका खुलासा किया है, न ही निर्वासन के वारंट में कोई खामी अदालत के सामने पेश की गई थी तो अदालत ने माना की निर्वासन से पहले की शर्त बना दिया गया था और यह आवश्यक था कि जहां एक कार्यकारी प्रत्यायोजित विधायी शक्ति का प्रयोग कर रहा है उसे अपने अभ्यास में सभी वैधानिक आवश्यकताओ का पर्याप्त रूप से पालन करना चाहिए और यदि उसका निष्कर्ष निकालना इस अधिनियम का शर्त है तो उस शर्त की पूर्ति अधिनियम के रिकाॅर्ड को

दिखाई देनी चाहिए और उनका वारंट लागू **विचिटा रेलरोड एंड लाइट कंपनी बनाम पब्लिक यूटिलिटीज कमीशन (2)** के मामले में निर्भरता रखी गयी थी। यह फिर से एक सुनवाई का मामला था और कानून द्वारा आदेश में बताये जाने वाले निष्कर्ष का मामला था इसलिए हमारे सामने आने वाले प्रकृति के मामले से अलग किया जाना चाहिए। हालांकि यह जोडा जा सकता है कि अदालत ने निर्वासित लोगों को बरी नहीं किया और सचिव (श्रम) को मूल सुनवाई में पेश किये गये सबूतों पर अपने निष्कर्ष को सही और सही करने या उनके खिलाफ एक और कार्यवाही शुरू करने के लिए उचित समय दिया गया।

आखिरी मामला **पनामा रिफाइनिंग कंपनी बनाम एडी रयान (1)** के मामले में धारा 9 (ई) **राष्ट्रीय ओद्योगिक पुर्नप्राप्ति अधिनियम 1933** को अत्यधिक प्रत्यायोजन के आधार पर रद्द कर दिया गया था। हालांकि यह माना गया कि कार्यकारी आदेश में निषेध लागू करने में राष्ट्रपति की कार्यवाही के आधार पर कोई निष्कर्ष या कोई बयान नहीं था

जहां तक हमारे समक्ष मौजूदा मामले का प्रश्न है हमारी राय में यह मामला उचित नहीं है क्योंकि वहां धारा को ही हटा दिया गया था और परिणामस्वरूप इसके तहत पारित कार्यकारी आदेश का गिरना तय था इसलिए हामरी राय में ओद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा-3 का अन्य की दृष्ट से संवैधानिक होना ठीक था और वैध है (सी), (डी) और (जी)

निहित है और 15 मार्च 1951 को पारितआदेश संख्या 615 और 671 कानूनी और वैध है। इन परिस्थितियों में यह विचार करना आवश्यक नहीं है कि क्या उच्च न्यायालय यह अभिनिर्धारित करने में सही था कि उक्त मामले में निर्देशों के आदेश उक्त धारा के तहत विशेश आदेश थे तथा धारा-3 और उन आदेशों के तहत संदर्भ इसलिए वैध थे। मामले के इस दृष्टिकोण में अपीलें विफल हो जाती हैं और खारिज की जाती है। इन परिस्थितियों में हम लागत के संबंध में कोई आदेश पारित करते हैं, अपीलें खारिज कर दी गईं।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक राजपाल मीणा **(न्यायिक अधिकारी)** द्वारा किया गया है।

अस्वीकरणः- यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिये स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिये इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और अधिकारिक उद्देश्यों के लिये, निर्णय का अंगे्रजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।